Chap- 1

Khand-1

अध्याय : 1

रचना तथा रचनाकार

प्रस्तुत अध्याय में रचना तथा रचनाकार का परिचय दिया गया है साथ ही ग्रन्थ का महत्व ,ग्रंथ क रचना की प्रेरणा तथा उद्देश्य आदि की भी चर्चा की गई है।

ग्रन्थ की महत्ता :

'लखपतिजसिन्धु' एक विशाल आकार का अप्रकाशित रीति ग्रंथ है। विक्रम की 18वीं शती के अंतिम चरण में रचित यह रचना न केवल रीति-परम्परा के परिपालन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है वरन् कच्छ भुज के नरेश महाराव लखपतिसिंह की गुण ग्राहकता, कलाप्रियता, ब्रजभाषा के प्रति अनन्य प्रेम, राज्य के बहुमुखी विकास के प्रति तत्परता आदि का भी समुचित प्रमाण प्रस्तुत करती है। यह ग्रन्थ न केवल रीति-परंपरा को ही समृद्ध बनाता है वरन् काव्य की दृष्टि से भी यह महत्वपूर्ण है। पन्द्रह तरंगों में समाप्त इस ग्रन्थ की भाषा 'ब्रज' है और अपने समकालीन हिंदी क्षेत्र के कवियों की भाषा से टक्कर लेने वाली है। यह ग्रंथ ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ के रचनाकार एक जैन मुनि हैं तथापि इन्होंने अपनी धर्म निरपेक्षता पूर्णरूप से प्रदर्शित की है, एक जैन मुनि से अपेक्षा तो यही क थी कि प्रारम्भ में वह अपने इष्टदेव की अभिवंदना करता, किन्तु कवि ने ऐसा न करके अपने आश्रयदाता की धार्मिक मान्यताओं का आदर किया है और ग्रंथ के प्रारंभ में सूर्य, सरस्वती, गणेश तथा यत्र-तत्र आसापुरा देवी का भी स्मरण किया गया है। इस प्रकार से कवि की धर्म-निरपेक्षता आज के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। इन दृष्टियों से इस ग्रन्थ की महत्ता स्वयं सिद्ध हो जाती है। अद्यावधि इस ग्रंथ का कोई विशिष्ट अध्ययन नहीं किया गया था। अहिन्दी प्रदेश गुजरात की इस साहित्यिक थाती का शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत अनुसन्धायिका द्वारा इसी दृष्टि से किया गया है।

'लखपति जससिन्धु' ग्रन्थ का परिचय :

कुँवरकुशल कृत 'लखपति जससिन्धु' साहित्य सर्वांग निरूपक ग्रन्थ है। यह ग्रंथ अभी तक केवल कुछ विद्वानों की जानकारी में ही आ सका है। इसलिए इस ग्रन्थ पर कोई विशेष आलोचनात्मक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। कुँवरचन्द्रप्रकाश सिंह इस ग्रन्थ के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि -'इन दोनों ग्रन्थों में केशवदास जी के द्वारा प्रवर्तित हिन्दी की आचार्य परंपरा रीतिकाल के अंतिम चरण में चरमोत्कर्ष की स्थिति में दिखाई पड़ती है। मुझे इसके पूर्व के पिंगल अथवा काव्य-शास्त्र के किसी ग्रन्थ में लक्षण और लक्ष्यों का इतना स्पष्ट निरूपण और समन्वयन नहीं मिला है। + + + उन्होंने हिंदी की आचार्य परम्परा की कतिपय कमियों को दूर किया है, उनका आचार्यत्व बड़ा व्यापक और प्रौढ़ है।[1] एक अन्य विद्वान् का मत है कि कुँवरकुशल ने लखपत जससिन्धु नामक काव्यशास्त्र का सर्वांगिक ऐसा ग्रन्थ लिखा है जो प्रकाशित होने पर हिंदी काव्यशास्त्र के इतिहास में एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जायेगा।[2] 'मिश्रबन्धु विनोद-भाग2' में मिश्र बन्धुओं ने इस ग्रन्थ के सम्बंध में प्रकाश डालते हुए केवल एक छन्द को उद्धृत किया है जो कि लखपति जससिन्धु की प्रथम तरंग में से लिया गया है।[3] अगरचन्द नाहटा ने जो लेख लिखा है उसमें भी ग्रन्थ की सामान्य चर्चा ही की गई है आलोचनात्मक दृष्टि से विचार नहीं हुआ है।

कुँवरकुशल द्वारा रचित 'लखपतिजससिन्धु' और 'लखपतिपिंगल' दोनों एक ही ग्रन्थ के दो खण्ड मात्र हैं। ~~(जिस पर आगे चलकर विचार किया जायेगा) जिसे विद्वानों ने अलग-अलग~~

1- कवि गोप कृत काव्यप्रभाकर किंवा रूक्मिणी हरण तथा अन्य ग्रंथ- सम्पा0 कुँवरचन्द्रप्रकाश सिंह, पृ0 27

2- गुजरात की हिंदी काव्य परंपरा तथा आचार्य कवि गोविन्द गिल्लाभाई- डॉ0 मालारविन्दम् चतुर्वेदी, पृ0 52

3- मिश्रबन्धु विनोद, भाग-2, मिश्रबन्धु, पृ0 668

~~[illegible] है।~~ यह ग्रन्थ राजा लखपति की प्रशस्ति से सम्बंधित है। लक्षणों के जो उदाहरण दिये गये हैं उनमें महाराव लखपति जी का ही वर्णन है। इनके आश्रय में रहकर ही कुँवरकुशल भुजनगर में इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। लखपति जससिन्धु की अंतिम तरंग अर्थात् लखपति पिंगल की जो प्रति जोधपुर में प्राप्त हुई है, उसकी पुष्पिका में ग्रन्थ-रचना-काल सूचक एक छप्पय की प्रथम दो पंक्तियाँ इस प्रकार मिलती हैं -

अब्द अठारह सतक ऊपर सरद्य अषाढ़ सित।
नौमी तिथि भृगुनंदन प्रगट उत्तरायन पूजित।।[1]

इस छन्द में आये हुए सरद्य शब्द का अर्थ श्री अगरचन्द नाहटा 7 से लेते हैं और इस प्रकार इस ग्रन्थ का रचनाकाल सम्बत् 1807 सिद्ध होता है, किन्तु उक्त पंक्तियों में आषाढ़ शुक्ल, नौमी तिथि, शुक्रवार तथा सूर्य का उत्तरायण होना भी लिखित है। अर्थात् ऐसा सम्बत् हो जिसमें तिथि, वार, पक्ष, मास तथा सूर्य का उत्तरायण होना निश्चित हो। सरद्य शब्द के अनेक अर्थ निकल सकते हैं और इससे सम्बत 1810, 1825, 1852 और 1855 हो सकता है। सम्बत् 1855 को छोड़कर 1807, 1810, 1825 तथा 1852 में कोई भी उपर्युक्त संकेतों को पूर्ण नहीं करते। सम्बत् 1855 अवश्य ऐसा सम्बत् पड़ता है जब सभी बातें पूर्ण होती हैं किन्तु इस सम्बत् के पक्ष मानने में कठिनाई यह पड़ती है कि यह सम्बत् कुँवरकुशल के बहुत उत्तरकाल का संकेत करनेवाला प्रतीत होता है। कुँवरकुशल के सम्बंध में तो यह भी नहीं जाना जा सकता है कि वे तब तक रहे भी होंगे अथवा नहीं, क्योंकि न तो कुँवरकुशल का जन्मकाल ही उपलब्ध है और न ही उनकी मृत्यु के सम्बंध में कोई उल्लेख मिलता है।

---

1 ल.ज.सि., छं.सं. ९१९
2. ~~An Indian ephemeris.By L.D.Swami Kannupillai~~
~~Vol.VI Page No-398~~

अत: एक अन्य सम्भावित अर्थ पर विचार करते हैं तो 'सरस्य' का यह अर्थ निकल सकता है - सर अर्थात् 5 तथा इस 5 का दोगुना अर्थात् 10। 10+5 = 15। इस तरह 'अब्द अठारह सतक ऊपर सरस्य' का अर्थ हुआ 1815। यह सम्वत् आषाढ़ सित, नौमी तिथि शुक्रवार उत्तरायन सभी की पूर्ति करता है। ईसवी सन् के अनुसार इस ग्रंथ की रचना 14 जुलाई शुक्रवार 1758 को हुई थी[1]। यह सम्बत ग्रन्थ-रचना का उपयुक्त काल द्योतन करता है।

सर्वांग निरूपक काव्यशास्त्रीय व्याख्या करने वाले 'लखपतिजससिन्धु' ग्रन्थ में लक्षणोदाहरण की जो पद्धति है वह मम्मट पर आधारित है अर्थात् लक्षण और उदाहरण दोनों अलग-अलग छन्दों में दिये गये हैं न कि चन्द्रालोक की भाँति एक ही छन्द के की प्रथम पंक्ति में लक्षण देकर द्वितीय पंक्ति में उदाहरण दिया गया है। कुँवरकुशल ने साथ में गद्य में टीका भी प्रस्तुत की है चाहे वह लक्षण रहा हो अथवा उदाहरण। उनकी इसी प्रवृति पर कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह अपना मन्तव्य देते हुए कहते हैं कि - 'लखपति जससिन्धु' में कुँअरकुशल ने लक्षण और उदाहरण दोनों का सम्यक् बोध कराने के लिए उनकी गद्य में टीकायें लिखी हैं पद्य में लिखे हुए लक्षणों को भी उन्होंने अधिक से अधिक स्पष्ट और सुबोध बनाने का प्रयत्न किया है। ब्रजभाषा पर उनका अच्छा अधिकार है, इसीलिए न तो उनके लक्षणों में अस्पष्टता है और उदाहरणों में दुर्बोधता।[2] उदाहरण के रूप में -

> शक्ति शास्त्र अभ्यास सौं काव्य लोक संस्कार।
> परसत कविता ते परम रीझत हैं रिझवार॥

---

1. An Indian ephemeris By - L. D. Swami Kannupillai, Vol. VI Page no. 398
2. कवि गोप कृत काव्यप्रभाकर किंवा रूक्मिणी हरण तथा अन्य ग्रन्थ सम्पा० कुँवरचन्द्रप्रकाश सिंह, पृ० 32

टीका ।। शक्ति कहा ईश्वर की इछा शास्त्र के अभ्यास सौं ।। काव्य के पढ़िबे तैं लोक के व्यवहार तैं ।। पूर्व जनम के संस्कार तैं ।। एती बात तैं काव्य होत हैं ।। ये काव्य के कारन है ।। येती बात होंहि तिनितें कविता जो क्वी सरीषो‡ पसरै विस्तरै । सो कविता सुनि राजानि के कुमार रीझै ।। [1]

थापन अपनें अर्थ कों पर अर्थ कौउ थाप ।।
कहत कुंअर कवि लक्षना उपादान ए आप ।।

टीका ।। अपने अर्थ कौं जहां थापिबौ । और पर अर्थ कौउ थापबौ तहां उपादान लक्षना कुंअर कवि कहत है ।।" [2]

उदाहरण - गजरा फूलनि के गुरु व चौपर खेलत चारू ।।
अतिहिं उताइल सौं चलत समरमगा में सारू ।।

टीका ।। गुरव कहतैं वमे भारी फूल के गजरा सो चौपर खेलत हैं चारू कहा मनोहर । इहां गजरानि कौं चारू चौपर षोलिबौं नांहीं संभवत ।। अर्थ यह जु गजरा चौपर कैसे षेलैं । तब यह अर्थ जानिये । गजरैनें सो ऐसे हाथ छाप रहे हैं जु देखहू नांही परत ।। ऐसे हाथ चौपर षोलत है । यह अभिप्राय ।। अति ए उताइल सौं चलत हैं ।। समर कहा संग्राम भूमि में सारू कहत हैं षांग चलत हैं । काहू नैं ऐसौ कह्यौं तौ खंग कौं आप चलिबौं असम्भव हैं कहा होई नहीं । तब लक्षना तैं जांनियैं कि हाथ चलत हैं ।। तौ इस हाथनि अपनों स्थापन कियो । पर अर्थ खंगनि कौं चलिबौं तिनको निषेध कीन्हौं ।। स्वारथ कौं साधन परार्थ कौं निषेधन यह उपादान लक्षनाभइ" ।। [3]

इसी प्रणाली के माध्यम से कुँवरकुशल अपनी बात को आसानी से स्पष्ट कर

1- लखपति जससिन्धु ,चतुर्थ तरंग, छन्द सं0 4

2- वही - पंचम तरंग, छन्द सं0 18

3- वही - छन्द सं0 19

सके हैं। और इनका कथन शीघ्र ही समझ में आ जाता है। अत: इस दृष्टि से इनका महत्व बढ़ जाता है। एक अन्य दृष्टि से भी इनका प्रस्तुत कार्य सराहनीय बन जाता है। जिन रीतिकालीन कवियों अथवा आचार्यों ने ऐसे लक्षण ग्रन्थ लिखे हैं उन्होंने भले ही अलग-अलग उदाहरण और लक्षण प्रस्तुत किये हों परन्तु उनकी गद्य में टीका नहीं दी है। उस पद्य के युग में भी गद्य का सफल प्रयोग करना अपने आप में एक महत्वपूर्ण कार्य है। सभी आचार्यों ने केवल पद्य का ही सहारा लिया है जबकि कुँवरकुशल ने गद्य को भी अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। इन्होंने गद्य का प्रयोग करके अपनी बात को सुचारू ढंग से प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है। यह गद्य भी स्पष्ट और साथ ही साथ सरल भी है।

'लखपति जससिन्धु' में पन्द्रह तरंगे हैं। इन तरंगों का सामान्य परिचय इस प्रकार है -

इस ग्रन्थ की प्रथम तरंग में कुँवरकुशल ने अपने आश्रयदाता लखपति जी के वंश का वर्णन किया है। यह वर्णन छंद संख्या 13 से 102 तक है और यह विष्णु से प्रारम्भ होता है। इसी तरंग में राजा की रुचियों की ओर भी संकेत किया गया है। इस वर्णन के से पूर्व प्रारम्भ में कुँवरकुशल ने सरस्वती की वन्दना की है। इसके पश्चात् राजा लखपति जी की सभा तथा ग्रन्थ-रचना का उद्देश्य और प्रेरणा का भी वर्णन किया है।

द्वितीय तरंग में भुजनगर का चित्र प्रस्तुत किया गया है। भुज का किला तथा भुज शहर का विस्तृत चित्रण है। यहाँ की क्रय-विक्रय की प्रणाली, यहाँ की बाजारों तथा उनमें उपलब्ध वस्तुओं का उल्लेख मिलता है।

तृतीय तरंग में कुँवरकुशल ने अपनी गुरू-परम्परा का वर्णन किया है। गुरू-परंपरा

का प्रारम्भ बाईसवें तीर्थंकर से प्रारम्भ किया है। कुँवरकुशल के गुरु कनककुशल को महाराव लखपति जी ने अपना गुरू माना था और आदरपूर्वक भट्टारक का पद देकर अपने पास रखा था। इस ओर भी संकेत किया गया है।[1]

चतुर्थ तरंग काव्य स्वरूप की परिचायक है। इसमें काव्य सम्बंधी सामान्य जानकारी है। काव्य स्वरूप,काव्योद्देश्य, काव्य हेतु, काव्यभेद तथा काव्यशरीर का वर्णन किया गया है।

पंचम तरंग में शब्दशक्ति का विस्तृत एवं स्पष्ट वर्णन है। कुँवरकुशल ने सर्वप्रथम शब्द की उत्पत्ति की बात करते हुए कहा है-

'आकांक्षा संनिधि अरू। सही योगिता संग ।।
अन्वय पद ऊर्थ निमिलित। प्रगटै शब्द प्रसंग ।।[2]

वाचक, लक्षक, व्यंजक तीन प्रकार के शब्दों के अनुरूप ही तीन प्रकार की शक्तियाँ अभिधा, लक्षणा और व्यंजना होती है। पुन: इन सबके भेद,प्रभेद बताये गये हैं। कुँवरचन्द्रप्रकाश सिंह लिखते हैं कि'लखपति जससिन्धु' की चौथी और पाँचवीं तरंगों में शब्द शक्ति का निरूपण किया गया है।[3] परन्तु यह सही नहीं है। शब्दशक्ति का निरूपण [illegible] केवल पाँचवीं तरंग में ही हुआ है। चौथी तरंग में काव्य सम्बंधी सामान्य जानकारी मिलती है।

1- गुरु कहि राखे गाम दे परम मानि करि प्यार।
ल.ज.सिं0, तृ.त.छन्द सं0 25

2- लखपति जससिन्धु, पंचम तरंग, छन्द सं0 1

3- कवि गोप कृत काव्यप्रभाकर किंवा रूक्मिणीहरण तथा अन्य ग्रन्थ - सम्पा0 कुँवरचन्द्रप्रकाशसिंह, पृ0 32

इस ग्रन्थ की छठी तरंग में ध्वनिकाव्य का विवेचन किया गया है। इस तरंग में 96 छन्द हैं। ध्वनिकाव्य के लक्षण तथा ध्वनिकाव्य के भेद विस्तृत रूप से चर्चा के विषय रहे हैं। भेद ही नहीं उपभेदों का भी उल्लेख किया गया है।

सातवीं तरंग में मध्यम काव्य का निरूपण किया गया है। इसमें अगूढ़, अपरांग, वाच्य सिद्धव्यंग्य, अस्फुट, सन्देह प्रधान, तुल्यवाचक प्रधान, काकु तथा असुन्दर नामक मध्यम काव्य के आठ प्रकारों का वर्णन मिलता है। जिसमें से अगूढ़ मध्यम काव्य का उदाहरण द्रष्टव्य है -

> अंग की जोति जगेहु लसै ललकैं छलकैं भुषा बोल सुनायें।
> और सौं ऐसी न राषत प्रीति सों कान्ह कुमार महामन भाये।।
> फूली फिरौ हौ सखी सबमैं तुम कोटि कटा छिन नैन नवाये।
> मोसौं दुरावत बात कहा सब गांउ मैं नेह नगारे बजाये।।[1]

यहाँ पर नायिका को सखी द्वारा किया गया व्यंग्य स्पष्ट ही झलक रहा है इसलिए अगूढ़ व्यंग्य है।

ग्रन्थ की आठवीं तरंग में काव्य के दोषों का उल्लेख किया गया है। काव्य-दोष के सम्बंध में कुँवरकुशल का मत है कि इनके साथ होने पर कविता सुखदायक नहीं हो सकती। यदि दोष विहीन कविता की जायेगी तो वह सुखदायक लगेगी।[2] इनमें निरूपित सभी दोष परम्परित ही हैं। शब्द दोष, अर्थदोष, वाक्य दोष तथा रस दोषों का विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है। साथ ही किस स्थान पर कौन सा दोष गुण बन जाया करता है इसका भी विवेचन किया है। इस तरंग में कुल 149 छन्द मिलते हैं।

1- लखपति जससिन्धु, सप्तम तरंग, छन्द सं0 2

2- कबित्त दोष जुत कीजियें सुखदायक नहि सोय।
कवित्त दोष बिन कीजियें सुखदायक सो होय।
लखपति जससिन्धु अष्टम तरंग छन्द सं0 1

नवीं तरंग का विवेचित विषय काव्य गुण है । कुँवरकुशल का विचार है कि काव्य-सृजन स्वयं में एक बहुत ही कठिन काम है । यह कठिनाई यदि केवल दोष रहित क्यों ही हो तो भी काम नहीं चलता वरन् काव्य तभी देदीप्यमान बन पायेगा जब उसमें गुण की निहिति हो पायेगी । दोष रहित होते हुए भी गुण रहित होने पर काव्य सुन्दर नहीं बनेगा । काव्य में सौन्दर्य लाने के लिए गुणों का समावेश अति आवश्यक है और ये गुण रस के साथ मिलकर सुन्दरता का प्रतिपादन करते हैं ।[1] कुँवरकुशल गुणों की संख्या (माधुर्य, ओज तथा प्रसाद) तीन ही मानते हैं और रस के आधीन मानते हैं अर्थात् गुण शौर्यादिवत् आत्मिक गुण हैं न कि अनुप्रासादि कटककुण्डलादिवत्। (इस पर विस्तृत चर्चा यथास्थान की जायेगी)

दसवीं, ग्यारहवीं तथा बारहवीं तरंगों में शब्दालंकार का निरूपण हुआ है । इनमें वक्रोक्ति, श्लेष, अनुप्रास तथा यमक का वर्णन किया गया है । चित्रालंकार का विशद् विवेचन करते हुए चित्रालंकार को अनेक रूपों में बताया है ।

'लखपति जससिन्धु' की तेरहवीं तरंग का विषय अर्थालंकार है । कुल मिलाकर 100 अर्थालंकारों के उदाहरणों सहित लक्षण दिये गये हैं ये 100 अर्थालंकार चन्द्रालोक, और 'कुवलयानन्द' के ही हैं परन्तु इनके वर्णन का क्रम इनका अपना है । कुँवरकुशल अर्थालंकारों में उपमा को सर्वप्रथम स्थान देते हैं क्योंकि उपमेय और उपमान अर्थालंकारों में प्राणस्वरूप स्थित हैं ।[2] यहीं पर उपमान, उपमेय, वाचक शब्द तथा साधारण धर्म चारों के लक्षण दिये गये हैं इसके बाद ही उपमा अलंकार का निरूपण हुआ है ।

1- दोष रहित पै गुन नहि दीपै कविता दुष को काम ।
कहे इहां गुन कुअर कबित के रस जुत अभिराम ।। वही, नवम तरंग, छं0सं0 1

2- उपमान रूपमेय ये पावहु भूषन प्रान ।
लखपति जससिन्धु त्रेरहवीं तरंग, छन्द सं0 3

लखपति जससिन्धु की चौदहवीं तरंग में मात्रिक छन्दों का वर्णन मिलता है। मात्रिक छन्दों के वर्णन से पूर्व छन्द ~~[illegible]~~ सम्बंधी सामान्य जानकारी दी गई है अर्थात् गुरु लघु की पहचान[1] संयुक्ताक्षर का प्रयोग, नौ ऐसे शब्द जो भाषा में प्रयुक्त नहीं किए जाते[2], पंच णण(ट,ठ,ड,ढ,ण), ~~[illegible]~~ गणों का आपसी सम्बंध [3] वर्णित हुए हैं। इसके बाद मात्रा-उद्दिष्ट, मात्रा-पताका, मात्रा-मर्कटी, मात्रा-प्रभा, विवेचित किए गए हैं। मात्रिक छन्दों में सर्वप्रथम दोहा छन्द का वर्णन मिलता है इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है -

पहिले तेरह मत्त पढ़ि दूजै ग्यारहै देषि।
ऐसै उत्तरकौ यहै ये दोहा अवरेषि ।। [4]

दोहे का निम्नलिखित उदाहरण ~~दोहे का~~ दिया गया है -

कच्छधनी लषपति कुंवर रावनंद जग रूप।
बड़े सुबस बरबंड बहु : भुव के मानत भूप ।। [5]

इसी प्रकार पन्द्रहवीं तरंग में गाहा प्रकरण वर्णित हुआ है। यहाँ पर भी गाहा प्रस्तार, गाहा नष्ट, गाहा मेरू, गाहा पताका, गाहा मर्कटी, गाहा की जाति,

---

1- क किकु तीन ए लघु कहो दूजे गुरू दरसाय।
रेखा सूधी लक रूचिर गरू सो बंक गनाय ।।
ल.ज.सिं० ~~चौदहवीं~~ चतुर्दशी तरंग, छन्द सं० 11

2- ञ ऋ ॠ ऌ ॡ ऐ ~~अं~~ ऊ जुंमण कहै निरधार ।।
भाषा में भावत नहीं सुर बानी सुषकार ।। वही, छन्द सं० 18

3- मगन नगन द्वै मित्र भगन यगन चाकर भये।
रगन सगन है सत्रु : तगनरू जगन उदास तकि ।। वही, छन्द सं० 55

4- वही - छन्द सं० 134

5- ल.ज.सिं०, ~~चौदहवीं~~ चतुर्दशी तरंग, छन्द सं० 135

बय, अंस, बसन, वर्ण आभूषण, तिलक, तोल इत्यादि का बड़ा ही विस्तृत व विशद विवेचन किया गया है। तत्पश्चात् गाहा के बाईस प्रकारों की चर्चा हुई है जिनमें से एक लक्षणोदाहरण सहित द्रष्टव्य है -

कीरती गाहा- लक्षण -

दसउ गुर इन देषौं और जु लघु करत सुकवि उनतीसै ।
कीरति गाह सु पेषौं चालीस रु तीन बरना है ।।

उदाहरण -

मन तन सुध जपि यामें कारज सब सरत टरत लेय जी कै ।
काम सु और निकामें सोहै कुवरेस सुम लछी ।।[1]

वर्णिक छन्द की एक अलग ही तरंग है परन्तु कुँवरकुशल ने इसकी संख्या नहीं बताई है। इसमें भी वर्ण-प्रस्तार, वर्ण-नष्ट, वर्ण-उद्दिष्ट, वर्ण-मेरु, वर्ण-पताका, वर्ण-मर्कटी तथा वर्ण-प्रमा का उल्लेख हुआ है। तीनों प्रकार के छन्द सम, अर्द्ध सम तथा विषम का भी संकेत मिलता है। यों यह सोलहवीं तरंग हो सकती है। परन्तु कवि द्वारा इस ओर संकेत नहीं किया गया है। अतः लखपति जससिन्धु की पन्द्रह ~~पंचदश~~ तरंगें ही मानी जायेंगी जिनकी कुल छन्द सं० 2151 है। इस तरह कुँवरकुशल कृत लखपति जससिन्धु काव्यशास्त्रीय काव्य के सर्वांग निरूपक ग्रन्थों में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

1- वही - ~~पन्द्रहवीं~~ पंचदश तरंग, छन्द सं० 505, 6

ग्रन्थ रचना की प्रेरणा :

मानवीय कला के जन्म के पीछे अवश्य ही कोई प्रेरणा रहती है। कुँवरकुशल कृत 'लखपतिजससिन्धु' जैसी वृहद् रचना के पीछे भी प्रेरणा कार्यरत रही है। भुज के महाराव लखपति जी हिन्दी प्रेमी थे और उन्होंने एक ब्रजभाषा काव्यशाला की स्थापना कराई थी। अत: उन्होंने अनुभव किया कि संस्कृत की समस्त सामग्री हिन्दी में भी उपलब्ध हो सके जिसके लिए उन्होंने कुँवरकुशल को आदेश दिया। अत: लखपति-जससिन्धु के प्रणयन में लखपति जी का आदेश ही रहा है जिसका अनुमोदन स्वयं कुँवरकुशल ने अपने ग्रन्थ में किया है -

> बैठे महल बसमनि ।। रचत सु यह विचार ।।
> कियो हुकमकवि सेये ।। लषपति ललित उदार ।।
> सुरबांनी मैं है सही ।। कविताई को कांम ।।
> सो या भाषा में सबै ।। आनहु रसअभिरांम ।।[1]

ग्रन्थ रचना का उद्देश्य :

प्रत्येक रचना के पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य रहता है। विशेष कर हिंदी में रचे गये लक्षण-ग्रन्थों का उद्देश्य तो स्पष्ट ही रहा है। केशवदास स्वयं कहते हैं -

> समुझै बाला बालकहू वर्णन पंथ अगाध।
> कवि प्रिया केसव करी, छमियो बुध अपराध ।।[2]

1- ल.ज.सिं0,प्र.त.छन्द सं0 8,9

2- केशवदास (खण्ड-2) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 101

इसी तरह कुँवरकुशल की ग्रन्थ-रचना के पीछे भी दो उद्देश्य रहे हैं। एक तो संस्कृत की सामग्री को हिन्दी में प्रस्तुत करना, दूसरे राजा लखपति का यश-वर्णन करना। जैसा कि हम देखते हैं कि रीतिकाल में कवियों ने जिन लक्षण-ग्रन्थों का निर्माण किया उनके पीछे भी यही उद्देश्य रहा। अब तक संस्कृत में तो अनेक लक्षण ग्रन्थों का निर्माण हो चुका था, काव्यशास्त्र के सिद्धान्त खण्डित -मण्डित होकर एक निश्चित स्वरूप प्राप्त कर चुके थे। परन्तु ऐसा कोई गम्भीर प्रयास हिन्दी में नहीं हुआ था। हिन्दी में ऐसे ग्रन्थों का अभाव था जो काव्यशास्त्र सम्बन्धी विस्तृत जानकारी दे सकें अथवा काव्यांग समस्याओं का सरल भाषा में सुस्पष्ट समाधान प्रस्तुत करके शंकाओं का निवारण कर सकें। इस प्रकार के ग्रन्थ सर्वप्रथम केशवदास ने हिंदी साहित्य को दिये तत्पश्चात लक्षण ग्रन्थों की भरमार शुरू हो गई। इन सभी का उद्देश्य यही था कि हिन्दी के पाठक भी इन सबसे परिचित हो सकें। ऐसा ही उद्देश्य कुँवरकुशल का भी रहा है।

दूसरा उद्देश्य इनके समक्ष राजा के यश का वर्णन करना था। केवल यही कवि ही नहीं रीतिकाल के सभी आश्रित कवियों ने अपने आश्रयदाता के गुणगान के लिए इस प्रकार का सहारा ढूंढ लिया था। ग्रन्थ निर्माण के साथ-साथ राजा का यश भी वर्णित हो जाता था। ठीक ऐसा ही उद्देश्य कुँवरकुशल का भी है जिसकी स्वीकारोक्ति हमें मिलती है -

सुर गुरु सम है कवि सबै। पच्छिम पति कै पास।
कुंवरकुशल तिनि मै करत उ बहु यदु को जस बास।।[1]

इसके अतिरिक्त जो उद्देश्य हैं अपनी भावाभिव्यक्ति तत्व। रचयिता को अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए किसी न किसी माध्यम की आवश्यकता पड़ती है। इसी बहाने उसके हृदय में उठने वाली भावलहरियाँ कविता के रूप में हमारे सामने

1- ल.ज.सिं0,प्र.त.छन्द सं0 10

अठखेलियाँ करती हुई प्रतीत होती हैं। इसी तरह चाहे लक्षण ग्रन्थ का रचयिता हो उसे भी एक सहारा मिल जाता है। संस्कृत में उदाहरण दूसरों के दिये जाने की परम्परा थी परन्तु हिंदी में इसके विपरीत लक्षणों के साथ-साथ उदाहरण भी स्वनिर्मित मिलते हैं। इससे एक लाभ यह हुआ कि इनके आचार्य रूप के साथ-साथ कवि रूप से भी हम परिचित हो सके हैं। यही बात हम कुँवरकुशल के सम्बंध में भी कह सकते हैं। आचार्यत्व के साथ-साथ इनके अन्दर का कवि भी मुखरित हो उठा है। अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए भी इस ग्रन्थ का प्रणयन सम्पन्न हो सका है।

ग्रन्थ रचना का आधार :

रीतिकालीन आचार्यों ने संस्कृताचार्यों द्वारा निर्देशित मार्ग का अनुसरण किया। रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य केशवदास द्वारा (अलंकारवादी) चलायी परम्परा का अनुसरण न करके सभी ने चिन्तामणि (रसध्वनिवादी) का ही मार्ग अपनाया। कुँवरकुशल मम्मट से प्रभावित रहे हैं इसका प्रमाण स्वयं कवि के शब्दों में देखिए -

पाय लषपति कौ हुकम ।। रचन रूचिर मन राषि ।।
श्री लषपति जससिंधु यह ।। शुभ मम्मट मत साषि ।।[1]

इसके प्रमाणस्वरूप हम अनेक उदाहरणों को ले सकते हैं जो मम्मट के ही लिये गये हैं। मम्मट की छाया कुँवरकुशल पर सर्वत्र देखी जा सकती है। वर्णन में भी वही क्रम देखने को मिलता है जैसा कि काव्यप्रकाश में है। इतना ही नहीं काव्यप्रकाश का जो मंगलाचरण है[2] उसी का अनुदित रूप हमें लखपतिजससिन्धु के मंगलाचरण में मिलता है :—

1- ल ज सिं0 छन्द सं0 11

2- नियतिकृत नियमरहिताम् ह्लादैकमयी मनन्यपर तन्त्राम्।
नवरसरूचिराम् निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति ।।
काव्यप्रकाश, पृ0 2

तत्व नियति कृत नियम रहित तिनिसौं यह राजै ।।
येक मयी आनंद बीय मैं नहीं बिराजै ।।
रस नव रचना रची छत्र ज्यौं छिती पैं छाजी ।।
गुरूता लीन्हैं गात सुगुन की धुनि सौं गाजी ।।
सु प्रसन्न बुद्धि दाइ सुयश।। भजत होत यस बहुरि भय ।।
सुखदा यसदा कवि की सरस, जब रमौ भारती मात जय ।।[1]

इसमें कवि ने सुखदा यसदा को और जोड़ दिया है, शेष सारा वर्णन वही है। इतना होने पर भी हम उसे पूर्ण अनूदित नहीं कह सकते। इसमें कवि की अपनी प्रतिभा के भी दर्शन होते हैं। कहा जाता है कि नकल करने में भी अक्ल की जरूरत पड़ती है। यह बात यहाँ पूर्णतया चरितार्थ होती है। नकल होने के बावजूद भी हम इसे नकल नहीं कह सकते क्योंकि यह वर्णन नीरस तथा शुष्क नहीं।

ग्रन्थ के शीर्षक पर विचार :

कुँवरकुशल कृत 'लखपतिजससिन्धु' के शीर्षक के सम्बंध में विद्वानों में परस्पर मतभेद रहा है। इसके लिए तीन नाम प्रयुक्त किए जाते रहे हैं पहला 'लखपति जससिन्धु' दूसरा 'लखपति पिंगल', तीसरा 'कवि-रहस्य'। अब प्रश्न यह उठता है कि इन तीन नामों में से कौन सा शीर्षक उचित है, अथवा कोई दो शीर्षक उचित ठहरते हैं, अथवा तीनों ही उपयुक्त प्रतीत होते हैं। कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने इस ग्रन्थ के शीर्षक से सम्बंधी मत दो स्थानों पर प्रस्तुत किए हैं जिसमें एक स्थान पर 'लखपति-पिंगल' का वास्तविक नाम 'कवि-रहस्य' मानते हुए कहते हैं - 'इस ग्रन्थ का असली नाम कवि रहस्य है। लखपति पिंगल इसका लोकप्रसिद्ध नाम हो सकता है क्योंकि इसमें

1- ल.ज.सिं0 प्र.त.छन्द सं0 1

छन्दों के जितने उदाहरण दिये गये हैं वे अधिकांशत: महाराव लखपतिसिंह की प्रशस्ति के रूप में हैं।"[1] दूसरे स्थान पर लखपतिजससिन्धु और लखपति पिंगल को एक ही ग्रन्थ मानते हुए वास्तविक नाम कवि रहस्य स्वीकार करते हुए कहा है - इस उल्लेख के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि लखपति जससिन्धु और लखपति - पिंगल दोनों ही कवि रहस्य नामक एक ग्रंथ के अलग-अलग दो खण्ड मात्र हैं। कवि के द्वारा मूल रूप में यह ग्रंथ कविरहस्य के नाम से लिखा गया होगा और सब उदाहरणों के लखपतिसिंह परक होने के कारण वह दो भिन्न नामों से भी प्रसिद्ध किया गया।"[2]

यदि हम इस ग्रन्थ का नाम कवि रहस्य मानते हैं तो उचित प्रतीत नहीं होता। लखपति जससिन्धु (लखपति पिंगल वाले खण्ड को मिलाकर) जैसा वृहद ग्रन्थ पन्द्रह तरंगों में लिखा गया है जिनमें से केवल द्वितीय, षष्ठ तथा सप्तम तरंगों की पुष्पिका में ही कवि रहस्य का प्रयोग मिलता है शेष बारह तरंगों में लखपति-जससिन्धु का ही प्रयोग किया गया है। उपर्युक्त जिन तीन तरंगों में कवि-रहस्य का उल्लेख मिलता है उनमें क्रमश: भुजनगर का वर्णन, ध्वनिकाव्य तथा मध्यम काव्य का वर्णन किया गया है। अत: यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि ने द्वितीय तरंग को छोड़कर अन्य दो तरंगों में कवि रहस्य का प्रयोग सोद्देश्य किया हो क्योंकि ध्वनिकाव्य तथा मध्यमकाव्य की पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् यदि काव्य का प्रणयन और पठन किया जाये तो वह काव्य अधिक प्रभावित करने वाला हो सकता है तथा शीघ्र हृदयंगम किया जा सकता है क्योंकि ध्वनिकाव्य के माध्यम से कवि यह जान सकता है कि किस प्रकार काव्य में ध्वन्यात्मकता का गुण लाया जा सकता है तथा ऐसे ही किसी सुन्दर शब्द का प्रयोग करके अपने कथन को

1- कवि गोपकृत काव्य प्रभाकर किंवा रुक्मिणी हरण तथा अन्य ग्रन्थ- सं० कुँवरचन्द्रप्रकाश सिंह, पृ० 27

2- वही- पृ० 35

और अधिक व्यंग्यपूर्ण बना सकता है। इसी में कवि की सफलता का रहस्य छुपा हुआ है। दूसरी ओर इस ध्वनिकाव्य की जानकारी से पाठक भी कवि के अभिप्राय से शीघ्र ही अवगत हो सकेगा और कवि द्वारा छिपाये गये व्यंग्य को अनावृत करके उसका रसास्वादन कर सकेगा। इसी में पाठक के आनन्दातिरेक की प्राप्ति का रहस्य छिपा हुआ है। इसलिए कवि ने इन तरंगों में `कवि-रहस्य` का प्रयोग किया है। अतएव, `कवि रहस्य` शीर्षक को सम्पूर्ण ग्रन्थ के लिए स्वीकार करना समीचीन प्रतीत नहीं होता।

दूसरे `लखपति पिंगल` शीर्षक भी उचित नहीं ठहरता। क्योंकि वह ग्रन्थ के उत्तरांश का ही द्योतक है। `लखपति पिंगल` कहने से ग्रन्थ का पूर्वांश जिसमें अन्य काव्यांगों का विवेचन किया गया है का समावेश नहीं हो पाता। अतएव, लखपति जससिन्धु` कहने से समस्त ग्रन्थ का कलेवर समाहित हो जाता है क्योंकि पूरे ग्रन्थ में शृंगारपरक उदाहरणों के अतिरिक्त अधिकांशत: लखपति जी से ही सम्बंधित उदाहरण मिलते हैं। अत: इस दृष्टि से `लखपति जससिन्धु` शीर्षक ही उचित ठहरता है।

रीतिकालीन परम्परा के सन्दर्भ में ग्रन्थ-विवेचन की पद्धति :

यद्यपि संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों का निर्माण विपुल मात्रा में किया गया तथापि दोनों की विवेचन पद्धति में अन्तर दृष्टिगत होता है। यह अन्तर कई प्रकार से है एवं अपनी तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित भी। यहाँ पर इन दोनों का अन्तर बताते हुए रीतिकालीन परम्परा के सन्दर्भ में `लखपति जस-सिन्धु` की विवेचन पद्धति को देखने का प्रयास करेंगे -

(1) विवेचित विषय :

संस्कृत में रचा गया काव्यशास्त्र एक भिन्न आदर्श को लेकर चला। ~~अहाँ पर~~

यहाँ पर क्रमश: काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का विकास होता गया जो दूसरी तीसरी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ था। भरत के समय रस पर बल दिया गया था, भामह, दण्डी, रूद्रट तथा उद्भट आदि अलंकार के समर्थक रहे, वामन ने रीति को प्रमुखता प्रदान की तथा आनन्दवर्द्धन ने ध्वनि को महत्ता देकर एक भिन्न सिद्धान्त की स्थापना की। अत: यहाँ पर काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के विकास की एक स्पष्ट रेखा दीख पड़ती है। अन्तोगत्वा ध्वनि-सिद्धान्त को सर्व स्वीकृत मानते हुए अलंकार वादी जयदेव, रसवादी विश्वनाथ तथा जगन्नाथ जैसे आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में ध्वनि सम्बंधी विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया। संस्कृत की यह काव्यशास्त्रीय परम्परा क्षीण रूप में ही सही हिंदी में कृपाराम, से प्रारम्भ हो गई थी और केशवदास के लगभग 50 वर्ष बाद चिन्तामणि के समय से प्रबल वेग से प्रवाहित हुई जो प्रतापसाहि तक अविच्छिन्न रूप से चलती रही। हिन्दी के आचार्यों ने काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों को 'रीति' नाम से सम्बोधित किया जिसके फलस्वरूप इस काल विशेष को ही 'रीतिकाल' कहा जाने लगा है। इन हिन्दी रीति ग्रन्थों में काव्यविधान की चर्चा प्रमुख रूप से की जाती रही। संस्कृत के आचार्यों की भाँति हिन्दी के आचार्यों ने न तो किसी नये सिद्धान्त की स्थापना की और न ही विशेष रूप से किसी एक सिद्धान्त को मानते हुए उसका मण्डन एवं अन्य सिद्धान्तों का खण्डन किया। हिन्दी तक आते-आते सभी सिद्धान्त प्रतिष्ठित और स्वीकृत हो चुके थे जिससे सभी विवेचन के विषय रहे। मूल रूप से केवल एक सिद्धान्त ही मान्य नहीं रहा वरन् सभी का विवेचन किया जाता रहा।

यही प्रवृत्ति हम कुँवरकुशल के 'लखपतिजससिन्धु' में भी देखते हैं। इन्होंने भी अपने ग्रन्थ में काव्यविधान की ही चर्चा की है अर्थात् काव्य के सभी पदार्थों को लक्षणों द्वारा स्पष्ट करते हुए उदाहरण दिये हैं। रीतिकालीन अन्य आचार्यों की भाँति ही कुँवरकुशल ने भी अपने ग्रन्थ में जहाँ एक ओर ध्वनि-सिद्धान्त को विवेचित किया है वहीं गुण दोष, रस, अलंकार एवं छन्द पर भी

विचार किया है । उद्देश्य :- हिन्दी के आचार्य संस्कृत की क्लिष्ट सामग्री को सरल व सुगम बनाकर प्रस्तुत करना चाहते थे । अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए लक्षणोपरान्त स्वनिर्मित उदाहरण प्रस्तुत किये अन्यथा यह अत्यन्त सरल था कि वे अपने पूर्ववर्ती साहित्य में से उदाहरण प्रस्तुत करते । यही कारण है कि हिन्दी के आचार्यों के ग्रन्थों में सिद्धान्तों का विकास नहीं हुआ । जिन सिद्धान्तों की प्रतिस्थापना चिन्तामणि के 'कविकुलकल्पतरू' में हुई है, प्रतापसाहि ने भी उन्हीं सिद्धान्तों को मानते हुए 'काव्यविलास' की रचना की । इन सबके पीछे उद्देश्य श्रृंगार रस के एवं स्तुति के छन्द लिखकर आश्रय प्राप्ति एवं सिद्धान्तों की शिक्षा देना था । परन्तु संस्कृत आचार्यों के सामने ऐसा कोई उद्देश्य नहीं था । ये विशुद्ध रूप से आचार्य ही थे कवि नहीं जबकि हिन्दी के विद्वान् आचार्य एवं कवि दोनों थे । इन्होंने कवि और शिक्षक दोनों की दोहरी भूमिका निभाई । जहाँ इन्होंने एक ओर अपने आश्रयदाता से वाहवाही लूटी वहीं दूसरी ओर हिंदी के पाठक के लिए सुगम मार्ग प्रशस्त किया । इस सम्बंध में कहा गया है कि 'इससे एक लाभ तो यह हुआ कि इन कवियों को श्रृंगार रस की धारा प्रवाहित करने के लिए उपकरणभूत बहुविध सामग्री अनायास मिल गई और दूसरा लाभ यह कि विलासप्रिय एवं कामुक राजाओं एवं उनके पारिषदों को श्रृंगार रस के वर्णकों के साथ-साथ काव्य शास्त्र की सुबोध शिक्षा भी श्रवण-श्रावण अथवा पठन-पाठन के रूप में मिलती रही ।[1]

यही बात हम कुँवरकुशल कृत 'लखपतिजससिन्धु' के सन्दर्भ में भी कह सकते हैं । कुँवरकुशल ने अन्य रीतिकालीन आचार्यों की भाँति प्रमुख रूप से मम्मट का आश्रय ग्रहण करते हुए संस्कृत की क्लिष्ट सामग्री को हिन्दी(ब्रज) जैसी

1- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास-षष्ठ भाग-संपादक-डा० नगेन्द्र, पृ0 292

सरल व सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया। कुँवरकुशल ने आचार्यत्व का उत्तरदायित्व निभाते हुए अपने आश्रयदाता का यशोगान करते हुए श्रृंगार रस के सुन्दर उदाहरणों की विनियोजना की है। अन्य रीतिकालीन आचार्यों की भाँति ग्रन्थ में स्वनिर्मित उदाहरण ही दिये हैं। संस्कृत ग्रन्थों में लक्षणोपरान्त उदाहरण अन्य कवियों के लक्षण ग्रन्थों में से उद्धृत किये जाते थे परन्तु हिंदी में आचार्यत्व एवं कवित्व का अपूर्व सामंजस्य देखने को मिलता है। यही रीतिकालीन ग्रन्थ निर्माण की पद्धति 'लखपति जससिन्धु' में भी अपनाई गई है।

प्रतिपादन शैली :

संस्कृत एवं हिन्दी के आचार्यों ने अपने ग्रन्थ निर्माण में भिन्न प्रतिपादन शैली का उपयोग किया है। संस्कृत में कुछ विद्वान् आचार्यों ने पद्यात्मक शैली (भरत, भामह, दण्डी), कुछ आचार्यों ने सूत्रवृत्ति शैली (वामन) तथा कुछ आचार्यों ने कारिका वृत्ति शैली (आनन्दवर्द्धन मम्मट) अपनायी। कारिकावृत्ति में लिखने वाले संस्कृत के आचार्यों ने गद्यबद्ध वृत्ति को कारिकागत शास्त्रीय सिद्धान्तों की व्याख्या का साधन बनाया है। हिन्दी में प्राय: पद्यात्मक शैली ही विशेष रूप से ~~ग्राह्य~~ ग्राह्य हुई है। दोहे, सोरठे में लक्षण देकर कवित्त सवैये में उदाहरण दिये गये। केशव, मतिराम, चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, देव, भिखारीदास, पद्माकर प्रभृति आचार्य इसी परम्परा के हैं। महाराज जसवन्तसिंह ने जयदेव की प्रणाली से प्रभावित होकर एक ही दोहे में लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत किया है।

यदि हम 'लखपति जससिन्धु' को देखते हैं तो यहाँ भी यही प्रणाली दृष्टिगत होती है। इन्होंने भी अन्य रीतिकालीन आचार्यों की भाँति पद्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। इन्होंने भी दोहे व सोरठे में लक्षण देकर कवित्त

सवैये में उदाहरण दिये हैं। इसके अतिरिक्त एक जो अन्य विशेषता देखने को मिलती है वह उनकी गद्यात्मक शैली का प्रयोग है। हिन्दी के आचार्यों में कुलपति मिश्र तथा सोमनाथ इत्यादि ने कहीं-कहीं पर गद्यबद्ध वृत्ति का आश्रय लिया है। इस सम्बंध में डॉ० सत्यदेव चौधरी का कथन है कि -"इनका गद्य भाग एक तो संस्कृत ग्रन्थों में प्रयुक्त गद्यभाग की तुलना में मात्रा की दृष्टि से शतांश भी नहीं है - और दूसरे, न तो यह परिष्कृत एवं पुष्ट है और न इसमें गंभीर विवेचन का प्रयत्न ही किया गया है।"[1] परन्तु कुँवरकुशल के सम्बंध में ऐसा नहीं कहा जा सकता है। इन्होंने ग्रन्थ का अर्ध भाग तो गद्यात्मक वृत्ति में ही प्रस्तुत किया है। ग्रन्थ में प्रत्येक लक्षण ही नहीं उदाहरण को भी गद्य में विवेचित किया है। यह उनकी एक उपलब्धि ही मानी जायेगी। क्योंकि यद्यपि उस समय में गद्य का विकास भी पूर्णत: नहीं हो पाया था तथापि सरल व स्पष्ट ● गद्य का प्रयोग किया गया है।

ग्रन्थ -निरूपण-पद्धति :

रीतिकाल में ग्रन्थ-निरूपण की निम्नलिखित पद्धतियाँ प्रचलित थीं -

(1) सर्वाङ्ग निरूपण पद्धति :

इस प्रकार की पद्धति में काव्य के सभी अंगों-उपांगों का विस्तृत रूप से विवेचन विश्लेषण किया गया है। इस परम्परा में कविकुल कल्पतरु (चिन्तामणि), रस-रहस्य(कुलपति मिश्र), शब्द रसायन(देव), काव्यसिद्धान्त(सूरति मिश्र), काव्य सरोज(श्रीपति), रसपीयूषनिधि(सोमनाथ), काव्यनिर्णय(भिखारीदास), काव्य विलास(प्रतापसाहि) जैसे ग्रन्थ आते हैं।

1- हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास- डॉ० नगेन्द्र, पृ० २९३

(2) रस विषयक ग्रन्थ :

इसमें प्रमुख रूप से श्रृंगार रस का ही विवेचन किया गया है। इस कोटि में रसिकप्रिया(केशवदास), रसराज(मतिराम), रसविलास(देव), रस-सारांश(भिखारीदास), रसप्रबोध(रसलीन), जगद्विनोद(पद्माकर), नवरसतरंग (बेनी प्रवीन), व्यंग्यार्थ कौमुदी(प्रतापसाहि) इत्यादि ग्रन्थ आते हैं।

अलंकार विषयक ग्रन्थ :

इनमें केवल अलंकारों का ही वर्णन किया गया है। कविप्रिया (केशवदास), भाषाभूषण(जसवन्तसिंह), ललितललाम, अलंकारपंचाशिका(मतिराम), शिव-राजभूषण(भूषण), अलंकार चन्द्रोदय(रसिक सुमति), कविकुलकण्ठाभरण (दूलह), पद्माभरण(पदेम- पद्माकर) जैसे ग्रन्थ अलंकार विषयक ग्रन्थ कहे जाल जा सकते हैं।

पिंगल विषयक ग्रन्थ :

इस प्रकार के ग्रन्थों का विषय छन्द ही रहा है। छन्दमाला (केशवदास) पिंगल(चिन्तामणि), छन्दसार(मतिराम), वृत्तविचार(सुखदेव मिश्र), छन्दोर्णव(भिखारीदास) आदि ग्रन्थ पिंगल के ग्रन्थ हैं।

इस दृष्टि से कुँवरकुशल सर्वांग निरूपक आचार्यों की श्रेणी में आते हैं। अन्य सर्वांगनिरूपक आचार्यों की भाँति ही ग्रन्थारम्भ में अपने आश्रयदाता का वंश परिचय देते हुए अपनी गुरू परम्परा का उल्लेख किया है तत्पश्चात काव्य-सम्बंधी सामान्य जानकारी देते हुए काव्यांगों का विस्तृत रूप से विवेचन व विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इन काव्यांगों में शब्द-शक्ति, ध्वनि, गुण, दोष, अलंकार तथा छन्द इत्यादि विवेचित हुए हैं।

अत: हम देखते है कि कुँवरकुशल ने तत्कालीन ग्रन्थों की निरूपण पद्धति को पूर्णत: अपनाते हुए अपने ग्रन्थ 'लखपति जससिन्धु' का प्रणयन किया है। इनका उद्देश्य भी रीतिकालीन अन्य आचार्यों की भाँति ही रहा है। अत: 'लखपति-जससिन्धु' ग्रन्थ रीति-परम्परा का पूर्णत: प्रतिनिधित्व करने वाला है।

कुँवरकुशल का रचना-काल तथा अन्य रचनाएँ :

कुँवरकुशल ने सभी ग्रन्थों का प्रणयन भुज में रहकर की किया था। कुँवरकुशल महाराज लखपति जी के अनधिकृत रूप से गद्दी पर बैठने के पश्चात् भुज आये। यह समय सम्वत् 1794 का है। हिंदी साहित्य के इतिहास में यह समय रीतिकाल की संज्ञा से अभिहित किया गया है। अत: इस दृष्टि से कुँवरकुशल रीतिकाल के कवि ठहरते हैं। यों इनके सम्बंध में विस्तृत रूप से किसी भी प्रकार की जानकारी नहीं मिलती, लेकिन इनके उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर इनका रचनाकाल निश्चित किया जा सकता है। इन्होंने जो भी ग्रन्थ लिखे हैं वे सभी या तो लखपति जी को समर्पित है अथवा उनके पुत्र गौड़ कुँवर को। इनके लिखे हुए ग्रन्थों में से कुछ का रचनाकाल इस प्रकार है -

1- लखपति मंजरी नाममाला (सम्वत् 1794)
2- लखपति जससिन्धु (सम्वत 1815)
3- लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय (सम्वत् 1817)
4- गौहड़ पिंगल (सम्वत् 1821)
5- पारसी पारसात नाममाला (सम्वत् 1826)
6- माता नों छन्द
7- महाराव लखपति दुवावैत
8- रागमाला
9- सिंहासनीसानी (गौड़ कुँवर की)

अंतिम चार ग्रन्थों का रचनाकाल इनमें कहीं भी उल्लिखित नहीं हुआ है। अंतिम ग्रन्थ गौड़ कुँवर जी को समर्पित हुआ है। कुँवरकुशल लखपति और उनके

पुत्र गौड़ दोनों द्वारा सम्मानित रहे हैं। महाराव लखपति कवित्त लखपति जी के ही राज्यकाल में लिखा गया होगा। माता नो छन्द इनकी परवर्ती रचना है क्योंकि इस ग्रन्थ में गौड़ कुँवर और उनके पुत्र रायधन का भी उल्लेख मिलता है। अत: अनुमानत: कुँवरकुशल का रचनाकाल सम्वत् 1794 से लेकर 1830 तक रहा होगा। यहाँ पर कुँवरकुशल की अन्य रचनाओं का सामान्य परिचय दिया जा रहा है जिससे 'लखपति जससिन्धु' को समझने में सहायता मिलेगी।

अन्य रचनाएँ :

कुँवरकुशल ने केवल लखपति जससिन्धु ही नहीं लिखा, वरन् अपनी सृजन-तृष्णा को शान्त करने के लिए अन्य ग्रन्थों का भी प्रणयन किया। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी इसलिए अन्य अनेक विषयों पर उन्होंने लिखा। केवल काव्यशास्त्रीय अंगों की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ(लखपति जससिन्धु, गौड़-पिंगल) ही नहीं प्रस्तुत किये वरन् भिन्न विषय से सम्बंध रखने वाले जैसे कोश इत्यादि भी ग्रन्थ लिखे जिनमें हम 'पारसी पारसात नाममाला' का नाम ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त माता के प्रति अपनी भक्ति भावना को प्रगट करने वाला ग्रन्थ 'माता नो छन्द' भी लिखा, संगीत की पर्याप्त जानकारी देने के लिए 'रागमाला' का भी प्रणयन हुआ। इस प्रकार कुँवरकुशल द्वारा रचे गये निम्नलिखित ग्रन्थ हैं :-

(1)लखपति मंजरी नाममाला : विवरण : प्राप्ति स्थान-प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान जोधपुर, विषय-कोश, भाषा-ब्रज, लिपि समय- 19वीं शताब्दी, पत्रसंख्या -13, प्रति पृष्ठ पंक्ति-9, कुल छन्द सं0 - 109, माप- $10\frac{1}{3}" + 4\frac{1}{2}"$ ।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में शिवजी व भारती की वन्दना की गई है।[1] इस ग्रन्थ के रचनाकाल के लिए निम्न दोहा मिलता है :-

---

1- सुखकर वरदायक सरस नायक जितन वरंग, लायक गुन गन सों ललित जय शिवगिरिजासंग।
भली रती तिहुं भौन में बढत चढत विख्यात, पातक न रहतपारसी, भजत भारती मात ।।
लखपति मंजरी नाममाला- छन्द सं0 1, 2

संबत सतरै से बरष पुनि नेऊ उपरि च्यार ।
माघ मास एकादशी किसनपछि कविवार ।।[1]

कुँवरकुशल ने अपने मन-मधुकर को गुरु के चरण-कमल में रमाने की बात कही है। अगरचन्द नाहटा द्वारा लिखे गये 'भट्टारक कनककुशल और कुंवरकुशल' एक लेख में भी यही समय दिया गया है लखपति मंजरी नाममाला में राजा के वंश का वर्णन छन्द 9 से प्रारम्भ किया गया है। यहाँ पर लगभग 140 राजाओं के नाम मिलते हैं। यह नामावली विष्णु से प्रारम्भ की गई है। विष्णु के पश्चात् उनके पुत्र ब्रह्मा, ब्रह्मा के पुत्र अत्रिमुनि, अत्रि के पुत्र चन्द्र, चन्द्र के पुत्र बुद्ध इस तरह परम्परा चलती है। कुँवरकुशल के आश्रयदाता लखपति जी तथा उनके पिता राजा देशल के वर्णन में उनकी सुख सम्पदा, उनकी समृद्धि इत्यादि का पता चलता है। राजा देशल के लिए कहा गया है -

गोड़ राउ के पाट गनि रजधानी रखपाल ।
छमावंत बख्यात छबि देसल राउ दयाल ।।[2]

इसी तरह लखपति जी के लिए भी कहा गया है -

कच्छपति देसल राउ कौ नषात तेज तपवीर ।
महाराज लषपति मरद|कुंअर कोटि कोटीर।।
बडी सांनि तोरैं बडे । मखमलति बडी मसंद ।
बड़े मानदीवान बडा दिपत राउ कौ नंद ।।[3]

1- लखपति मंजरी नाममाला, छन्द सं0 104 (1 लखपति मंजरी नाममाला छंद सं. 7)
2- वही - छन्द सं0 17,8
3- आमलि साहनि तैं अकसि ।/साहनि तैं सु सनेहु ।
साहनि जैसी साहिबी।/कछ साहि के गेहु ।/। वही, छन्द सं0 112

राजा लखपति के बड़े ही ठाठ थे।[1] उनके महल के उत्तुंग और अटारियाँ तो गिनती में ही नहीं आते।[2] इसी प्रकार राजा द्वारा शिक्षा पर सात लाख रूपये खर्च किए जाते थे।[3] इससे यह सिद्ध होता है कि राजा अपनी जनता को शिक्षा देने के पक्ष में थे। इसलिए इतनी बड़ी धनराशि इस पुण्य कार्य के लिए निश्चित रूप से खर्च की जाती थी।

तत्पश्चात् हमें कविवंश वर्णन भी मिलता है। यहाँ पर ऋषभ से वर्णन प्रारम्भ किया गया है, बाईसवें, चौबीसवें तीर्थन्कर का भी चित्रण मिलता है।[4] पचपनवें तख्त पर विमलसूरि को स्थान प्राप्त था। इसी तरह वर्णन करते-करते

1- आमलि साहनि तें अकसि। साहनि तें सु सनेहु।
साहनि जैसी साहिबी। कछु साहि के गेहु।। वही - छन्द सं0 112

2- राजमहल बहु रावटी। अरू अटानि उत्तुंग।।
गिनती आवें नहि गनत। नये जासु नवरंग।।
वही - छन्द सं0 113

3- त्यौं षानैं तालीम कें। सात लाख लगि सीम।
बित उपारौं प्रति बरष। तेज होत तालीम।।

लखपति मंजरी नाममाला- छन्द सं0 116

4- राजै सुर पहिले ब्रिषभ। साधि जोग सुभ ध्यानुं।
ज्योति रूप भये जोति मिलि। बिमल ग्यानु भगवानु।।
सकल राजमंडल सिरें। सेवत जिन्हें सचीशु।
तीर्थन्कर तैसें भये। बहुरि और बाइसुं।
महावीर राजनि मुकुट। अतुल बली अरि हंत।
वैसेइ चौबीसए। भये आपु भगवंत।।
वही - छन्द सं0 122-24

अपने गुरु कनक कुशल तक आते हैं जिन्हें सभी सम्मान देते थे।[1] राजा लखपति ने स्वयं गुरु माना था और एक गाँव भी दे दिया था -

तदनु राउ देसल तनुज। लखपति लष्षा कुमार।
गुरु कहि राष्यो गाम दै। परम मान करि प्यार।।[2]

अन्त में कुँवरकुशल बताते हैं कि इस ग्रन्थ का निर्माण कवि ने लखपति जी के कहने पर सविता का ध्यान धर कर किया है। यद्यपि राजा के दरबार में एक से एक शास्त्रवेत्ता थे तथापि एतबार कुँवरकुशल पर ही किया --

कवि इंद आगैं रहै। औरहुं सुधी अनेक।
अखिल शास्त्रवेत्ता अधिक। एकु एकु तैं एकु।।
गुरु परम पूज्य महा पुन्यास कैं। पुष्ट जदपि परिवार।
तदपि सु मों कुंअरेस कौं। आनत मन इतबार।।[3]

कुँवरकुशल के एक दूसरे ग्रन्थ 'लखपति जससिन्धु' में जो नृपवंशवर्णन और कविवंशवर्णन नामक प्रथम तथा तृतीय तरंगें मिलती हैं ये वही हैं अर्थात् लखपतिमंजरी नाममाला को ही अविकल रूप से लखपति जससिन्धु में समाहित कर लिया है। अन्तर केवल प्रारम्भ और अन्त में ही देखा जा सकता है। लखपति मंजरी-नाममाला के प्रारम्भ में जो वन्दनादि दी गई हैं लखपति जससिन्धु में नहीं है वहाँ पर राजा

1- प्रतपैं तिनि के पाट अब। जु सरस किति जिहाजु।
भरे भारती भारती। कनक कुशल कविराजु।।
मानैं जिन्हें महाबली। महाराज अजमाल।
अरू सूबे अजमेर के। मानैं के महिपाल।। वही- छन्द सं0 140-41

2- वही - छन्द सं0 145

3- लखपति मंजरी नाममाला-छन्द सं0 146,47

की सभा तथा ग्रन्थोद्देश्य इत्यादि का वर्णन है। लखपति मंजरी नाममाला के अन्त में इस ग्रन्थ की रचना के सम्बंध में जो निर्देश किये गये हैं उन्हें हटा दिया गया है। इसके अतिरिक्त जब लखपति जससिन्धु में वर्णन किया गया है वहाँ पर मय्याराम नामक संगीतज्ञ के आगमन की सूचना है जो कि लखपति मंजरी नाममाला में नहीं मिलती क्योंकि यह घटना लखपति मंजरी नाममाला के निर्माण के बाद की तथा लखपति जससिन्धु के निर्माण से पहले की है। इसलिए लखपति जससिन्धु में इसका उल्लेख मिलता है। उक्त अंश के अतिरिक्त शेष सारा वर्णन वही है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि परम्परा का अनुसरण करते हुए कवि ने इस नाममाला को लखपति जससिन्धु में समाहित कर लिया है। क्योंकि रीतिकालीन अन्य कवियों (केशवदास की कविप्रिया) ने भी ग्रन्थ प्रारम्भ करने से पूर्व अपने आश्रयदाता तथा अपने गुरु की परम्परा का उल्लेख किया है।

(2) लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय : विवरण : प्राप्ति-स्थान- प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर की शाखा राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर जयपुर, विषय-गीत शोक, भाषा-ब्रज, रचना समय-1817 संबत्, लिपि काल- संबत् 1868, पत्र संख्या 9, प्रति पृष्ठ पंक्ति-13, कुल छन्द सं० -90, माप- 8"×4" ।

इस ग्रन्थ का निर्माण राजा लखपति जी की मृत्यु के पश्चात् उनकी स्मृति में हुआ है। इसमें कवि ने राजा की यशोगाथा का वर्णन किया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में देवी आसापुरा तथा गणेश की वन्दना की गई है। इस वन्दना में ग्रन्थ की निर्बाध पूर्ति अथवा ऐसा ही कोई अन्य संकेत नहीं मिलता वरन् राजा की समृद्धि के लिए याचना की गई है।[1] राजा का चित्रण सरल शब्दावली में पर सुन्दर ढंग से किया गया है -

---

1- सकल मनोरथ सफल कर आसापुरा आप।
सुखदाई दरसन सदा निरषत होंहि न पाप ।।
आई श्री आसापुरा राजत कक्षधर राजि।
तुम कच्छपति को देत हो बहु दौलति गजबाजि ।।
आतपलगि ज्यौं अरक कों अरक तूल उडि जात।
त्यों लंबोदर दरस तैं विघन अनेकैं बिलात ।।

लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय- छन्द सं० 2,4,५

सूरज से परकासकर रतिपति से तन रूप ।
अवनियति में इंद्र से भये लष्षपति भूप ।।[1]

राजा की प्रशंसा, उनके सुन्दर कार्य, उनके गुणों का ही उल्लेख मिलता है। राजा दानी हैं इस ओर संकेत किया गया है -

भुजपति लष्षपति भोज सौं दाता दीनदयाल ।
जस सुनि कवि जन कों जिहि निति प्रति किये निहाल ।।[2]

राजा परदेसियों के लिए पीहर के समान तथा अपने देशवासियों के लिए तो नाथवत् ही है और कवियों के लिए साक्षात् कल्पतरू के समान है जिन्हें हाथ भर-भर दान किया जाता था।[3] तत्पश्चात् राजा के दाह संस्कार का वर्णन आता है। यहाँ पर बताया गया कि इनके साथ पन्द्रह सतियाँ सती हुई थीं। कवि ने वर्णन बहुत ही संक्षिप्त किया है और इतना प्रभावपूर्ण नहीं है, सरल शब्दावली में ही लिखा गया है। इतना अवश्य है कि राजा की स्मृति देशी और विदेशी व्यक्तियों में किस प्रकार विद्यमान है इसका वर्णन आंशिक रूप से सुन्दर बन पड़ा है। इसका वर्णन करने के लिए कवि ने बारहमासा और षटऋतु के वर्णन की परम्परा को माध्यम बनाया है। प्रत्येक ऋतु और मास में उसके (ऋतु और मास के) गुण तथा प्रभाव का ही उल्लेख है। प्रत्येक छप्पय के अंत में 'बिसरे न इहिं रिति प्रजा को निति राउ लष्षपति नृप सिरै' पंक्ति की पुनरावृत्ति हुई है जिससे एक प्रकार की लयात्मकता आ गई है। यह सारा वर्णन कुछ इस प्रकार वर्णित हुआ है मानों किसी नायिका का पति प्रवास को गया है और

1- वही - छन्द सं0 8
2- वही - छन्द सं0 6
3- पीहर परदेसीनिकौं निज घर नर कौं नाथ ।
कविजन कौं हौं कल्पतरू बकसे धन भरि बाथ ।।
लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय- छन्द सं0 15

उसके विरह में नायिका प्रत्येक ऋतु और मास में कैसा अनुभव करती है कुछ इसी प्रकार का वर्णन यहाँ पर हुआ है। कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

चैत मास का वर्णन -

चिहुं दिसि चमेली बहुत बेली फूलत खर फुल्लिया।
तुह कांति कोकिल मंजु मंजुल कुकि भ्रमर गन कुल्लिया।
सुभ ससि अकासैं किय प्रकासैं चैत निरमल चित हरैं।
बिसरैं न इहि रिति प्रजा कौं निति राउ लषापति नृप सिरैं ।।[1]

कार्तिक मास का वर्णन -

कहि मास काती मोद माती कामिनी क्रीड़ा करैं।
रुचि रास रमती फिरनि फिरती घमक धरती पग धरैं।
सुर सेव कीजत दान दीजत चित्र चित्रित चित हरैं।।
बिसरैं न इहि रिति प्रजा कौं निति राउ लषापति नृप सिरैं ।।[2]

इतना ही नहीं इस ग्रन्थ के अन्त में इसकी फल प्राप्ति भी बताई गई है मानो कोई भक्ति ग्रन्थ रचा गया हो जिसके पठन-पाठन से मोक्ष अथवा ऐसे ही किसी अन्य प्रकार की लाभान्विति होनेवाली हो -

यह समझौ लषाधीर कौं सुनैं पढ़ैं सुग्यांन।
सकल मनोरथ सिद्धि वढ़ै परम सुधारसपान ।।[3]

1- वही- छन्द सं0 62

2- लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय, छन्द सं0 77

3- वही- छन्द सं0 90

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ अत्यन्त ही सरल पद्धति पर रचा गया है। इसमें सीधे सादे कथन है। वैसे जिस कारुणिक प्रसंग को लेकर ग्रन्थ की रचना की गई है, ग्रन्थ में कहीं भी इतनी गहरी कारुणिकता, इतनी मार्मिकता दृष्टिगत नहीं होती कि हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाये और न ही हम कवि के काव्यत्व से प्रभावित हो पाते हैं।

3- पारसी पारसात नाममाला : विवरण : प्राप्ति स्थान-राजस्थान पुरातत्व मंदिर जयपुर(हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रह) विषय- कोश, भाषा ब्रज(हिन्दी), लिपि समय- सम्बत् 1857, पत्रसं0 35, प्रति पत्र पंक्ति-9, कुल छन्द संख्या -353, माप $10'' \times 4\frac{1}{2}''$ ।

'पारसी पारसात नाममाला' का प्रणयन राजा लखपति जी के आदेश पर किया है ऐसी स्वीकारोक्ति कवि द्वारा प्रस्तुत की गई है।[1] यह एकार्थी शब्दकोश है। इसमें हिन्दी, फारसी और अरबी भाषा के शब्दों के अर्थ दिये गये हैं। इसके पीछे यही उद्देश्य रहा है कि लोगों को भाषा सम्बंधी सामान्य जानकारी मिल सके। यह ग्रन्थ दस भागों में बँटा हुआ है। इन्होंने भाग के लिए 'बाब' शब्द का प्रयोग किया है जो कि अरबी और सिन्धी भाषा का शब्द है। पहले बाब में पारिवारिक जीवन के सम्बन्धों अथवा रिश्तों का उल्लेख मिलता है। दूसरे बाब में आदमी की पहचान कराने वाले शब्दों का वर्णन है जिसमें शासकीय औद्योगिक क्षेत्र की शब्दावली प्रयुक्त है। तीसरे बाब में शरीर के विभिन्न अवयवों का नख से शिख तक का वर्णन है। चौथे बाब में पोशाक और जेवरों के नाम बताये गये हैं, पाँचवें बाब में खाने के मेवे अर्थात् फलों की नामावली बताई गई है, छठे बाब में शहर, कोट, हवेली सम्बन्धी

1- किय लषपति कुँअरेस कौं। हित करि हुकम हजूर।
पारसात है पारसी। प्रगटहु लाषापूर ।।
पारसी पारसात नाममाला- छन्द सं0 9

शब्दों का प्रयोग किया गया है। सातवें बाब में बावर्ची खाने में काम में लाई जानेवाली वस्तुओं के नाम उल्लिखित हुए हैं, आठवें बाब में पक्षियों और ढोरों का वर्णन है, नवें बाब में आसमान, बादल, बरसात इत्यादि से सम्बंधित शब्दों का वर्णन मिलता है, तथा दसवें बाब में सप्ताह में आनेवाले दिनों के नाम, 1 से 10 तक तथा उसके बाद 20, 30, 40, 50, 60, 70, 80, 90, 100 तक की गिनती के और 12 महीनों का उल्लेख किया गया है। इस बाब को कवि ने `बिचि और जुदी जुदी बात के नाम` कहा है।

पारसी पारसात नाममाला` के प्रारम्भ में सविता की स्तुति प्रस्तुत की गई है।[1] यहाँ पर भी कुँवरकुशल की प्रशस्ति परक प्रवृत्ति ही देखने को मिलती है। जिसमें यश प्राप्ति की कामना की गई है। गणेश स्तुति में वे लखपति के मंगल की याचना करते हुए कहते हैं -

> बर देत सही बंछित करत धरा कछ रिधि सिधि धरहु।
> कवि कुंअर राउ लषधीर कै गनपति निति मंगल करहु।।`[2]

यह नाममाला द्विभाषी कोश ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में ब्रजभाषा के शब्दों का फारसी भाषा में तथा फारसी भाषा के शब्दों का ब्रजभाषा में अनुवाद पद्यबद्ध करके रखा गया है। एक विद्वान् ने अपनी पुस्तक में इस ग्रन्थ के सम्बंध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि-`शब्दों का संकलन नितान्त मौलिक पद्धति पर किया गया है। जहाँ इसमें एक ओर विवेचित नामों का शीर्षक देकर

1- सविता की सेवा कियैं। पसरैं कविता दूर।
छबि ताकी जग मैं छती। निधि वाकैं गुणनूर।।
पारसी पारसात नाममाला, छन्द 3

2- वही- छन्द -4

हिन्दी नाममालाओं की परिपाटी का अनुगमन है, वहाँ `खालिक बारी` तथा `अल्लाखुदाइ` की शैली भी अपनाई गई है। इस दृष्टि से दोनों धाराओं का संगम इसमें मिलता है। पुन: बर्गों का स्पष्ट उल्लेख कर निरूपण में आंशिक स्पष्टता भी आ गई है।[1] इनके कुछ उदाहरण देखने से उनकी विवेचन पद्धति का पता चल जायेगा -

बाप के नाम ।। पिदर अब्बवालद् पढ़ौ ।। बली दहु सु कहि ताप ।।
माता के नाम ।। मामकउम् माता कहौ ।। जपि जिय इनिकौं जाय ।।[2]
पातिस्याह के नाम।। षाका नरूषुसरोंमिलक ।। साहि पातस्याह सोय ।[3]
बाबरची नाम।। बावरचियँ ।। मनि प्रकास भवियानु ।।[4]

कहीं-कहीं अत्यन्त ही सरल शब्दावली प्रयुक्त की गई है -

नष नाम । नाषुन नष ।
पँसुरी नाम ।। पह्लू पसुरी पाइयँ ।।[5]
अंजीर नाम ।। अंजीर सु अंजीर ।।[6]
कलम नाम ।। कलम कलम कौं नाउं कहि ।।[7]

1- हिन्दी कोश साहित्य (1500-1800) एक विवेचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन-जे अचलानन्द जखमोला

2- पारसी पारसात नाममाला-बाब अव्वल् छन्द सं0 12

3- पारसी ,, ,, छन्द सं0 39

4- वही - छन्द सं0 54

5- वही - बाब तीसरा छन्द सं0 89-90

6- वही- बाब पाँचवाँ छन्द सं0 125

7- वही - बाब नौवाँ, छन्द सं0 283

इस तरह हम कह सकते हैं कि 'पारसी पारसात नाममाला' सरल तथा स्पष्ट पद्धति पर रचा गया एक द्विभाषी कोश ग्रन्थ है।

4- गौहड़ पिंगल : विवरण : प्राप्ति स्थान - हेमचन्द्राचार्य सूरि ज्ञानमंदिर पाटण, विषय- छन्द शास्त्र, भाषा-हिन्दी, पत्रसंख्या-10 से 89, रचना समय-सम्वत् 1821, लेखन समय- सम्वत् 1821, स्थिति-उत्तम, माप-10।।X4।। प्रति पत्र पंक्ति-12.

हेमचन्द्राचार्यसूरि ज्ञानमंदिर पाटण में इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ हैं एक प्रति की पत्रसंख्या 70 है और दूसरी प्रति में 40। इन दोनों का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि ये दोनों प्रतियाँ अलग नहीं वरन् एक ही ग्रन्थ के दो भाग हैं - एक पूर्वार्द्ध और दूसरा उत्तरार्द्ध। 40 पत्रवाली प्रति में प्रथम उल्लास वर्णित है और 70 पत्र वाली प्रति में द्वितीय और तृतीय उल्लास का मिलता है। प्रथम उल्लास में मात्रिक छन्दों का वर्णन किया गया है, द्वितीय उल्लास में गाहा प्रकरण तथा तृतीय उल्लास का विषय वर्णिक छन्द रहे हैं। ऐसा ही क्रम लखपति जससिन्धु के उत्तरांश पिंगल में भी है। गौहड़ पिंगल में उदाहरणों के विषय राजा गौड़जी (लखपति जी के पुत्र) रहे हैं और लखपति-जससिन्धु उत्तरांश में लखपति जी। जिस प्रकार पिंगल का वर्णन प्रारम्भ करने से पहले सूरज की वन्दना की गई है[1] उसी प्रकार गौहड़ पिंगल में भी सूरज की बंदना की गई है -

---

1- सचि सूरिज देव की करहु सेव कुंवरेस।
कविता दे अरू जो करै अधिक बुधि उपदेस।।
उदै भयै जाके कुंवर निषाल पाप को नास।
दिन प्रतिदिन देव तैं सुफल बुधि की आस।।
कस्यप सुत की कुंवर करै बडाई कोय।
कविताई ताकी कुसल हरषित पंडित होय।।
ल.ज.सिं0 चतुर्दश तरंग, छन्द 1,2,3

सुखकर सूरज हो सदा देव सकल के देव ।
कुंअरकुसल पावैं करैं सुम निति तुम पय सेव ।। [1]

तत्पश्चात् आसापुरा, गणेश तथा गुरु की स्तुति की गई है। इसके बाद कवि ने कविता के लिए क्या-क्या शर्तें आवश्यक हैं इसका उल्लेख किया है। जो कवि पिंगल के बिना पढ़े ही कविता करना प्रारम्भ करता है उसकी हँसी संसार में तथा कवि-समुदाय में होती है। इसके लिए दृष्टान्त देकर समझाते हुए कहते हैं -

कविता पिंगल बिनु करैं गीता बिनु कह ग्यान ।
कोक कंठ बिनु रति करैं अति वह नर अज्ञान ।। [2]

ग्रन्थ के अन्त में सूरज की कृपा से यह कार्य सम्पन्न हुआ मानते हैं -

अठारह सत ऊपरैं इक्कस संवति आहि ।
कुंवरकुशल सूरज क्रिपा सुम जस कियो सराहि ।।
सुदि बैसाषी तीज सुम मंगल मंगलवार ।
कछपति जस पिंगल कुंअर सुष करि किय संसार ।। [3]

इस ग्रन्थ का एक दो उदाहरण द्रष्टव्य है -
वर्णिक छन्द उपजाती का लक्षण -

1- गौहड़ पिंगल-प्रथम उल्लास, छन्द-1

2- वही - प्रथम उल्लास, छन्द-9

3- वही - तृतीय उल्लास, छन्द 944, 45

उभय तान करि आदि मैं पीछैं जगन पुनीत ।
अंतगुरु उपजाति मैं रच्यौ छंद यह रीत ।।[1]

उदाहरण -

जादौं महीपाल सुहायौ जननीय जायौ अंसावतारी कछभूमि आयौ ।
गोपाल नीति जस जग गायौ पूरौ प्रतापी गहडेर पायौ ।।[2]

मात्रिक छन्द चौबोला का लक्षण-
तीनै पहिलै सोरह मता चौथैं दूजैं चौदह हो ।
उदाहरण - मता साठि मनोहर लागत चौबोला कवि चहहु हौ ।।[3]

आवत कछ धनी असवारिय बागिनि लाष बडे बल का ।
पैदल पार न पावत है पुनि लंबहि हाथ ल्यै भलका[4]।।

परंतु प्रथम चरण में सोलह न होकर पन्द्रह मात्राएँ हैं अतः अपूर्ण है ।

5- माता नो छन्द : विवरण : प्राप्ति स्थान-राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, विषय-स्तुति, भाषा-राजस्थानी, लिपि समय- संवत् 1851, पत्रसंख्या-4, छन्द संख्या-30, माप-10" X $4\frac{1}{2}$" । यहीं पर दूसरी प्रति भी मिली है जिसका विवरण इस प्रकार है - लिपि समय-19वीं शताब्दी, पत्रसंख्या-5, माप-9" X $4\frac{1}{2}$" ।

यह ग्रन्थ राजस्थानी भाषा में लिखा गया है । वैसे कुँवरकुशल के अन्य सभी ग्रन्थ ब्रजभाषा में मिलते हैं केवल यही ग्रन्थ राजस्थानी भाषा में लिखा गया है ।

1- गौहड पिंगल, तृतीय उल्लास, छन्द536
2- वही- ,, ,, छन्द541
3- वही- प्रथम उल्लास छन्द 231
4- वही- प्रथम उल्लास छन्द233

'माता नो छन्द' का दूसरा नाम 'ईश्वरी छन्द' भी है। अपने ग्रन्थ की समाप्ति पर पुष्पिका में कवि ने 'माता नो छन्द' लिखा है तथा ग्रन्थारम्भ करते हैं तो 'ईश्वरी नो छन्द' लिखते हैं। इसमें कच्छ की माता आसापुरा देवी की स्तुति की गई है। ग्रन्थ का प्रारम्भ ही कच्छ के त्राण की विनती से करते हैं -

बडी जोति ब्रह्मांड अंबा बिख्याता, तुमे आसापुरा सदा कच्छत्राता।।[1]

आसापुरा देवी के लिए कई स्थानों पर 'भवानी' का सम्बोधन भी प्रयुक्त हुआ है -

रंग्या रंग लाली किया पाय राता, भजों श्री भवानी सदा सुष्षादाता।[2]
भजो श्री भवानी भुजावी सवाली ।।[3]

इस ग्रन्थ में माता का नख से लेकर शिखा तक का वर्णन किया गया है। इस प्रकार का वर्णन करने के लिए उपमान सभी प्रचलित ही प्रयोग किए गए हैं। महाकाली का रूप चित्रित करने के लिए परुषावृत्ति का प्रयोग किया गया है साथ ही ओजपूर्ण शब्दावली का संयोजन किया गया है, इससे वर्णन प्रभावपूर्ण बन सका है। युद्ध का वातावरण ही हमारे सामने लाकर उपस्थित कर देते हैं। रणक्षेत्र में तो डाकिनियों, साकिनियों का तो भाग्योदय ही हो जाता है वे रक्त और माँस पेट भर कर खाती हैं -

---

1- माता नो छन्द, छन्द-1

2- वही- छन्द संख्या 1

3- वही - छन्द सं0 5

पिए भूतणी प्रेतणी रक्त प्यासं । ग्रसै गृधणी युग्गणी मंस ग्रासं ।।
हुआ डाकिणि साकिणी ही हुलासं ।। उडै सांमली कांमली लै अकासं ।।[1]

'माता नो छन्द' की भाषा लालित्यपूर्ण है। युद्ध वर्णन को छोड़कर सर्वत्र भाषा एक मृदु तथा लयपूर्ण धारा में प्रवाहित होती प्रतीत होती है।

उदाहरणत :-

वणी मेखला लवाली विशाली ।। सुहाली रूमाली सुकाली रसाली ।।
कसी बातियें कंचुकी रंग काली ।। भजो श्री भवांनी मुजावी सवाली ।।[2]

ग्रन्थ के अंत में कच्छदेश की समृद्धि के लिए प्रार्थना की गई है साथ ही गौड़ राजा के राज्य की अविचलता के लिए भी याचना की गई है। इससे प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ महाराज गौड़ के समय में रचा गया है क्योंकि उनके अन्य ग्रन्थों में लखपति जी का उल्लेख हुआ है। इतना ही नहीं राजा गौड़ के पुत्र रायधन का भी वर्णन आया है।[3] यहाँ पर पहली बार कुँवरकुशल ने अपने लिए भी समृद्धि माँगी है -

करी भट्टारक वीनती धरो अंबिका कान।
कुंअरकुशल कवि ने सदा द्यो सुष संपति दान ।।[4]

1- मातानो छन्द, छन्द सं0 22

2- वही- छन्द सं0 5

3- रायधन कुंअरेस सदा सेवक तुमारो ।। वही- छन्द सं0 29

4- वही- ,, ,, छन्द सं0 30

इसके अतिरिक्त ग्रन्थ में कोई इतनी भावातिरेकता दृष्टिगत नहीं होती । सारा वर्णन साधारण सा है । शब्दों का खिलवाड़ अधिक है । छन्द में जिस शब्द को लेते हैं उसी का प्रयोग अधिक बार करते चले जाते हैं । हाँ इससे लास्य का गुण अवश्य आ गया है । अन्य किसी प्रकार की काव्योपलब्धि नहीं होती । भक्ति सम्बंधी रचना होते हुए भी भक्ति भावना की प्रबलता नहीं मिलती, न ही भावावेग पूर्ण उद्गारों का समावेश मिलता है । मात्र साधारण शब्दों में की गई आसापुरा देवी की स्तुति है ।

6- महाराव लखपति दुवावैत :

इस ग्रन्थ का उल्लेख कुँवरचन्द्रप्रकाश सिंह ने किया है ।[1] लेकिन वह उल्लेख भर ही है विस्तृत चर्चा नहीं की गई है । अगरचन्द नाहटा ने अपने लेख में इस पर कुछ प्रकाश डाला है । हमें यह प्रति अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिली है और न ही अन्य किसी ग्रन्थ में इसका उल्लेख किया गया है । अगरचन्द नाहटा लिखते हैं कि-'यह प्रति ओलिये के रूप में है । यह वर्णनात्मक खड़ी बोली हिंदी गद्य काव्य है । लगभग 500 श्लोक परिमित यह रचना दुवावैत संज्ञक रचनाओं में सबसे बड़ी और विशिष्ट है । वर्णन की निराली छटा पढ़ते ही बनती है । आदि अन्त इस प्रकार है -

आदि - 'अहो आवो बे यार, बैठो दरबार ।
ये चांदनी राति, कहो मजलसि की बाति ।
कहो कौन कौन मुलक कौन राजा कौन देखे,
कौन कौन पातस्या देखे ।'

1- कवि गोप कृत काव्यप्रभाकर किंवा रुक्मिणीहरण तथा अन्य ग्रन्थ- सम्पा० कुँवरचन्द्रप्रकाश सिंह, पृ० 27

अन्त - जिनिकी नीकी करनी, काहू तें न जाय बरनी ।
अतुल तेज उछहते च्यारों जुग अमर,
यह सदा सफल असी देत कवि कुंअर ।
इतिश्री महाराउ लषपति क कुवैत संपूर्ण ।"[1]

7- रागमाला :

इस ग्रन्थ का विवेचन करते हुए कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह कहते हैं - "इस ग्रन्थ से यह सिद्ध हो जाता है कि वे संगीतशास्त्र के भी आचार्य थे । इस ग्रन्थ में उन्होंने राग-रागनियों के स्वरूप और लक्षण लिखे हैं और उनकी गद्य में टीका भी की है ।[2] गुजरात के कवि दुलेराय कारणी ने भी इसका उल्लेख किया है ।[3] हमें यह ग्रन्थ कहीं भी देखने में नहीं आया है।

8- सिंह टपनीसानी (गौड़ कुंअर की) विवरण : प्राप्ति स्थान-एल.डी.इंस्टीट्यूट आफ इन्डोलोजी, अहमदाबाद । पत्रसंख्या -17, लिपि समय-18वीं शताब्दी, कुल छन्द सं0-147, भाषा-ब्रज (हिन्दी) माप- 9.3" X 5 1/2" ।

इस ग्रन्थ में कवि ने लखपति महाराव के पुत्र गौड़ जी को नायक का स्थान दिया है । कुँवरकुशल लखपति जी तथा गौड़ जी दोनों के द्वारा सम्मानित रहे थे। अन्य ग्रन्थों की तरह इस ग्रन्थ में के प्रारम्भ में कुँवरकुशल ने सूर्य की वन्दना की है -

---

1-भट्टारक कनककुशल और कुँवरकुशल-अगरचन्द नाहटा के लिखे लेख में से उद्धृत, पृ0 72
2- कवि गोप कृत काव्यप्रभाकर किंवा रुक्मिणी हरण तथा अन्य ग्रन्थ-
सम्पा0 कुँवरचन्द्रप्रकाश सिंह, पृ0 30
3- कच्छनां सन्तो अने कवियो- दुलेराय कारणी, पृ0 326

कस्यप सुत करता जगत ।। सूरज करहु सहाय ।।
गौड़ कुंअर गुन गाय हौं ।। नीसानी जु बनायँ ।।[1]

ग्रन्थ का प्रारंभ राजा की सुन्दरता के वर्णन से हुआ है, राजा सभा सहित किस प्रकार सुशोभित होते हैं इसका चित्रण देखिए -

`छन्द दिपत इंद्र दिपाउ कछपति । सीस छत्र सुहाय ।
चिहुं तरफ चामर मोर छलवर ।। सकल मन सुषदाय ।।
छन्द सकल मन सुषदाय सौभा ।। रचि सभा रस रूप ।।
गौड़ जु बिराजत छबि सुछाजत।। भुजा बल भुज भूप ।।[2]

इसी ग्रन्थ में हमें लखपति महाराज द्वारा किये गये `रेहा` गाँव का उल्लेख भी मिलता है और अपने गुरु कनककुशल के लिए `बड़े कवीसर` का सम्बोधन देते हुए कहते हैं -

छन्द तिनि बढावत तोल भुज मह ।। भटारक गुन भूरि ।
कहि कनककुशल बड़े कवीसर ।। सुभ सरसपद्धूरि ।।

+ + +

छन्द क्यो गाम उदार भुजपति ।। श्री लषपा महाराज ।
रेहा सनेहा सुछ किय दिय ।। कियौ धर्म सु काज ।।[3]

1- सिंहरपनीसानी (गौड़ कुंअर की) छन्द सं0 1

2- वही- छन्द सं0 21, 22

3- वही - छन्द सं0 35, 38

THE SMT. HANSA MEHTA LIBRARY, S. U.

इस ग्रन्थ में गौड़ महाराज की धर्म प्रवृत्ति, दान प्रवृत्ति, वीरता तथा फैले हुए यश का वर्णन मिलता है। उनकी कलाभिरुचि, संगीत प्रेम तथा नृत्याभिरुचि की ओर भी संकेत किया गया है, उस समय के प्रचलित वाद्य यंत्रों के नाम भी बताये गये हैं [1] इसके साथ-साथ पहलवानी, मुजरा, हाथी की सवारी आदि का भी वर्णन किया गया है। किले की बनावट पर भी प्रकाश डाला गया है। जैसा कि प्रायः होता है [illegible] किले की [illegible] ऊँची उठी हुई दीवार के चारों ओर एक चौड़ी पानी से भरी खाई बनी हुई होती है, द्वार पर चौकीदार होता है, ऊपर दीवार पर कंगूरों की पाँति दृष्टिगोचर होती है इत्यादि का वर्णन कवि ने बड़े विस्तार के साथ किया है -

हुन् द्वार गढ़ बड ठाट अविचल ।। असी गज उत्तंग ।।
षाइँ षानइँ जल भरी जहां ।। औ दिवाल सु ढंग ।।
हुन्औ दिवाल सु ढंग गढ़ गसु ।। कंगुरनि की पङ्ति ।।
पृथु गगन लगि पर चरू पक्के ।। षिति पतिनु किय षाति ।।
हुन् षितिपतिनु किय षाति अपनी ।। दसरू दुव तह द्वार ।।
अङ्गालि संकल यंत्र कीलें ।। कलस तोरन सार ।। [2]

1- हुन् रुचिर राग रसाल गावैं ।। बजत बाजे बीन ।।
ढोलक पषावज ढोल ढमढम ।। सुरिंद सुर कीन ।।

हुन् अलगजा करताल तुंबर ।। डुफ हुडक मुहु चंग ।।
तंबूर और रिनतूर पूंगी रुचिर रंग तरंग ।।
हुन् रुचिर रंग तरंग मुरली ।। नाफेरी करनालि ।।
सुर्कोक कामरि औ मंजीर ।। पिनाके कंसालि ।।
[illegible] हुन् पिनाकें कंसाल राव ।। नहथोहथ तंबूर ।।
बाजें छतीसौं बजत बिविध सु । ह्वै जु गौड़ हुजूर ।।
सिंहटपनीसानी (गौड़कुंअर की) छन्द सं० 45, 48, 50

2- वही- छन्द सं० 85-87

ऐसा ही वर्णन 'लखपति जससिन्धु' में भी किया गया है।[1] तत्पश्चात् कवि ने भुज नगर की औद्योगिक और सामाजिक स्थिति का चित्रण किया है। भुज में चारों वर्णों केव्यक्ति रहते हैं। यहीं पर अनेक धन्धों का भी वर्णन किया गया है। कपड़ों का वर्णन भी बहुत विस्तृत रूप से किया गया है। इसमें विभिन्न प्रकार के कपड़ों के नाम बताये गये हैं। उस समय दलाल के द्वारा क्रय-विक्रय होता था, इस तथ्य की ओर भी संकेतकिया गया है। वे दलाल लोभवश अधिक माल बेचने की फिक्र में लगे रहते थे।[2] ऐसा ही वर्णन लखपति जससिन्धु में भी मिलता है।[3]

1- द्वादस दरवाजे शुभसुघाट ।। कक्कसे क्विाले जैसे कपाट ।
कीले कटोर कूंजरन लाग । अलि अडोल भारी अदाग ।।
ल.ज.सिं0 द्वि.तरंग, छन्द सं0 148

2- साअटाना जरी नीलक ।। तासबक्ले संग ।।
हुन् तासबक्ले संग मुषमल ।। सुसह चीर बनाम ।।
बुलबुल चसम्मा बाफतेबहु ।। सकर षीर सुहात ।।
हुन् सकर षीर सुहात षेसनि।। नारि कुंवर नाम ।।
मुक्कसे मिसरू कीमषाबनि ।। अतलसैं आराम ।।
हुन् चीनियें चिलकाय भिलिमिलि ।। जरबफत दरियाय ।।
चोषान औ गुलबदन चौरस ।। बहुत बस्त्र बताय ।।
हुन् अषिल भरिहैं झोक अपने।।कुनि बिचिदलाल ।।
लैंटेपटलगावत लाभ कु बसि।। बिकावत बहु माल ।।
सिंहटपनीसानी (गाडकुंवर की) छन्द सं0 99-101, 103, 106

3- बैठे दुकान सोहे बजाज।। बहुमोल बस्त्र षातिक समाज ।।
मुषामलबनात जरफूतकीन ।। नवरंग जे बिथानीनि नवीन ।।
बाफते चीर बुलबुल चसमं।। दुरंगि दुमास न गहे नरम ।।
सुसह सपेद रंग सकरषीर।। चोषाना भिलमिल के सषीर ।।
कीमषाब अबल खास अटान.।। दरियाइ चीनियें दिय थान ।।
फूनानिभरी अतलस् अनूप।सेलानि नारि कुंवर सरूप ।।
द्वै सौ दलाल लाटपट लगाइ ।। सौदा सलूक बिविधे बनाइ ।।
ल.ज.सिं0, द्वितीय तरंग, छन्द सं0 68-70,72

जब मिठाई का वर्णन आता है तो मिठाई की एक लम्बी फेहरिश्त सी देने लग जाते हैं, फलों की एक लम्बी सूची सी दी गई है जो कि उस समय में बेचे जाते थे, विभिन्न प्रकार के अनाजों का वर्णन मिलता है। सभी व्यवसायियों चमार, लुहार, सुतार, धोबी, कुंभार सभी का विस्तृत परिचय दिया गया है। इन सबके पीछे इनका एक ही उद्देश्य जान पड़ता है कि जिससे पाठक के मन पर एक समृद्धिशाली शहर का प्रभाव पड़े। इन सबको पढ़ने के पश्चात् पाठक के मस्तिष्क में एक समृद्धिपूर्ण नगर का चित्र आ जाना स्वाभाविक है ताकि महाराज गौड़ जी की समृद्धि का अनुमान सहज ही लग सके। उस समय वर्ण व्यवस्था थी, राज्य में शांति थी। मंदिर, धर्मशाला, यज्ञशाला, कुएं, बाग, तड़ाग बापी के वर्णन से भी यही सिद्ध होता है कि कवि हमें राजा के वैभव आदि के दर्शन कराना चाहते हैं।

अन्य ग्रन्थों की तरह इस ग्रन्थ की भाषा भी सरल, सुललित तथा माधुर्यगुण सम्पन्न है। अलंकारों में अनुप्रास का प्रयोग अधिक है। कवि ने प्रत्येक छन्द के प्रारम्भ में हुन् शब्द का प्रयोग करके एक प्रकार से लालित्य की सृष्टि की है।

इस तरह कुँवरकुशल के कुल ग्रन्थों की संख्या इस प्रकार है -

1) लखपति मंजरी नाममाला।
2) लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय।
3) पारसी पारसात नाममाला।
4) गौहड़ पिंगल।
5) माता नो छन्द।
6) महाराव लखपति दुवावेत।
7) रागमाला।
8) सिंहटपनीसानी (गौड़ कुंअर की)।
9) लखपति जससिन्धु।